इकाई 8 सामाजिक यथार्थ के परिप्रेक्ष्य में 'आधे-अधूरे'

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य
8.1 प्रस्तावना
8.2 मध्यवर्गीय जीवन और 'आधे अधूरे' का कथ्य
8.3 स्त्री-पुरुष : संबंध-विश्लेषण
8.4 'आधे-अधूरे' में चरित्र-सृष्टि
8.5 'आधे-अधूरे' का परिवेश
8.6 'आधे-अधूरे' की भाषा और संवाद
8.7 सारांश

8.0 उद्देश्य

एम.ए. हिंदी के पाठ्यक्रम 'नाटक और अन्य गद्य विधाएँ' के खंड-2 की दूसरी इकाई है। इसके अंतर्गत हम समकालीन भारतीय मध्यवर्गीय जीवन के परिप्रेक्ष्य में मोहन राकेश के नाटक 'आधे-अधूरे' का अध्ययन करेंगे। मोहन राकेश के इस नाटक की कथावस्तु शहरी मध्यवर्ग के जीवन यथार्थ पर आधारित है। इसलिए यह ज़रूरी है कि हम इस बात को समझें कि मध्यवर्ग से क्या तात्पर्य है, उसकी विशेषताएँ क्या-क्या हैं और 'आधे-अधूरे' के संदर्भ में मध्यवर्ग का प्रश्न किस रूप में उपस्थित होता है।

मध्यवर्गीय जीवन पर आधारित होने के कारण इस नाटक के कथ्य को उसी के संदर्भ में समझना होगा। इस इकाई में आप मध्यवर्गीय जीवन के संदर्भ में 'आधे-अधूरे' के कथ्य को समझ सकेंगे।

इस नाटक में स्त्री-पुरुष संबंधों को ही कथा का आधार बनाया गया है। इसलिए यह ज़रूरी है कि स्त्री-पुरुष संबंधों के बारे में राकेश की दृष्टि का विवेचन कर उसे समझने का प्रयत्न करें। इस इकाई में इस पहलू पर भी विचार किया जाएगा।

'आधे-अधूरे' की चरित्र-सृष्टि से साक्षात्कार करना भी नाटक को समझने के लिए ज़रूरी है। इस नाटक में जो पात्र आते हैं, वे मध्यवर्ग की विभिन्न प्रवृत्तियों और मनोवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसलिए नाटक के पात्रों को इस दृष्टि से समझना ज़रूरी है।

इस नाटक का परिवेश शहरी है और शहरी जीवन में आने वाले परिवर्तनों को नाटककार किस हद तक प्रस्तुत करने में कामयाब है, इकाई में इस पर भी विचार किया जाएगा।

'आधे-अधूरे' की भाषा-संवाद संबंधी विशेषताओं पर इकाई में विचार किया जाएगा। नाटक की मंचीय प्रस्तुति में उसकी भाषा का महत्वपूर्ण योगदान होता है, इस बात को याद रखने की ज़रूरत है।

8.1 प्रस्तावना

एम.ए. हिंदी के पाठ्यक्रम-4 से संबंधित यह दूसरे खंड की दूसरी और पाठ्यक्रम की आठवीं इकाई है। इसकी सातवीं इकाई में आप मोहन राकेश के 'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों के राजहंस' और 'आधे-अधूरे' का परिचय प्राप्त करने के साथ-साथ नाटक और रंगमंच के

अंतःसंबंधों में संगति तथा राकेश के नाट्य-चिंतन का अध्ययन कर चुके हैं। यहाँ हम समकालीन भारतीय मध्यवर्गीय जीवन के यथार्थ परिप्रेक्ष्य में 'आधे-अधूरे' के कथ्य, स्त्री-पुरुष संबंध, चरित्रांकन, परिवेश और इसके भाषा-संवादों के विवेचन एवं विश्लेषण का प्रयत्न करेंगे।

राकेश का यह नाटक 19 और 26 जनवरी तथा 2 फरवरी, 1969 को साप्ताहिक पत्रिका 'धर्मयुग' के तीन अंकों में क्रमशः छपा। साथ ही साथ इसके अभिमंचन की भी तैयारी होती रही और दिल्ली की नाट्य-संस्था 'दिशांतर' द्वारा ओम शिवपुरी के निर्देशन में 2 मार्च, 1969 को प्रदर्शित भी कर दिया गया। कुछ ही समय के अंतराल से इसका पुस्तकाकार प्रकाशन भी हो गया। राकेश की रचनाओं पर उनके अपने जीवन की प्रत्यक्ष छाप रही है। अतः स्पष्ट है कि इसमें प्रस्तुत परिवार, परिवेश, पात्रों और अनुभव का संबंध राकेश द्वारा देखे और भोग गए छठे-सातवें दशक के भारतीय, महानगरीय, मध्यवर्गीय जीवन के यथार्थ से है और उसी संदर्भ में हमें इसका अध्ययन भी करना चाहिए।

मध्यवर्ग के पारिवारिक और सामाजिक जीवन में जो परिवर्तन हो रहे थे, उसका प्रभाव हमारी पारिवारिक और सामाजिक संरचना पर बहुत गहरा पड़ा। संयुक्त परिवार से एकल परिवार और एकल परिवार में भी पति-पत्नी और बच्चों के आपसी रिश्ते वही नहीं रह गए थे जो परंपरागत परिवारों में थे। 'आधे-अधूरे' का संबंध इस परिवर्तन से बहुत गहरा है। इस इकाई में आप इस परिप्रेक्ष्य में नाटक की विशेषताओं को समझ सकेंगे।

8.2 मध्यवर्गीय जीवन और 'आधे-अधूरे' का कथ्य

'आधे-अधूरे' न केवल समकालीन हिंदी नाट्य-लेखन बल्कि राकेश के पूर्ववर्ती दोनों नाटकों से भिन्न आधुनिक मध्यवर्गीय जीवन, अनुभव और परिवेश से सीधे साक्षात्कार करने वाला पहला सार्थक एवं प्रामाणिक नाटक है। यह मौजूदा महानगरीय भारतीय पारिवारिक जीवन की विडम्बना के कुछेक सघन बिंदुओं और स्त्री-पुरुष संबंधों की विसंगतियों का जीवन्त रेखांकन करता है। इसके यथार्थपरक कथ्य को समझने से पहले हमारे लिए भारतीय परिप्रेक्ष्य में मध्यवर्ग की अवधारणा और उसकी विशेषताओं को जान लेना उपयोगी और आवश्यक होगा।

मध्यवर्ग की अवधारणा : उद्भव और विकास

व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है। आर्थिक स्थिति, सामाजिक स्तर और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से समाज व्यक्ति-समूहों के कई वर्गों में विभक्त हो जाता है। व्यक्ति को वर्ग विशेष में प्रतिष्ठित करने के लिए उसकी आय, संपत्ति, आर्थिक दृष्टिकोण, वंश-परंपरा, रहन-सहन का स्तर और शिक्षा आदि का ध्यान रखा जाता है। आदिम कबीलों की आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था, मानव-जाति की वर्ग-विहीन स्थिति का संकेत देती है। परंतु उसके बाद के समाज और विशेषतः मध्य युग में उत्पादन-वृद्धि और व्यक्तिगत संपत्ति की बढ़ती हुई लालसा ने समाज को मुख्यतः उच्च (शोषक) और निम्न (शोषित) वर्गों में विभाजित कर दिया। वैज्ञानिक प्रगति, औद्योगिक क्रांति और पूंजीवादी व्यवस्था ने विश्व की आर्थिक-सामाजिक औरर बौद्धिक अवस्था पर व्यापक प्रभाव डाला और 18वीं शताब्दी के अंत में उच्च और निम्न के बीच एक तीसरे वर्ग का जन्म हुआ, जिसे मध्यवर्ग कहा गया। कुछ आर्थिक-सामाजिक चिंतकों के अनुसार सन् 1812 से पहले किसी वर्ग के लिए मध्यवर्ग शब्द का प्रयोग नहीं किया गया। स्पष्ट है कि 19वीं शताब्दी के प्रारंभ में मध्यवर्ग उभरा और पूंजीवादी औद्योगिक व्यवस्था के साथ बढ़ता चला गया। मार्क्स ने वर्ग-संघर्ष के ऐतिहासिक विकास की विवेचना करते हुए उच्च, निम्न और मध्यवर्ग को ही क्रमशः 'बुर्जुआ', 'प्रोलेतेरियत' और 'पैटी बुर्जुआ' कहा है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में देखें तो आदिम वर्गविहीन समाज के बाद यहाँ प्रचलित वर्ण-व्यवस्था मोटे तौर से वर्ग-व्यवस्था का सामाजिक रूप ही है। अंग्रेज़ों से पहले भारत में मौजूद संयुक्त परिवार, कृषि-व्यवस्था और घरेलू उद्योगों पर आधारित व्यवस्था अपने आप में एक पूर्ण इकाई थी।

16वीं शताब्दी में कुछ पाश्चात्य देशों के संपर्क से भारतीय जीवन और समाज में हलचल-सी महसूस की गई। मुगल-शासन के पतन के साथ शासन-सूत्र अंग्रेज़ों के हाथों में चला गया। अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद के चलते भारतवर्ष में मध्यवर्ग के विकास में अंग्रेज़ी शिक्षा के अतिरिक्त औद्योगिक विकास, शहरीकरण, अर्द्धविकसित पूंजीवादी व्यवस्था, व्यापार, बैंकिंग प्रणाली, प्रेस, संचार और यातायात के साधनों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। देश की आज़ादी के साथ हुए विभाजन और उसके बाद के पचास वर्षों में हुए बहुआयामी विकास तथा लगातार बढ़ते भ्रष्टाचार ने मध्यवर्ग का असंतुलित विकास किया, जिसके कारण मध्यवर्ग के तीन स्पष्ट स्तर/भेद दिखाई देने लगे - उच्चवर्ग, मध्यवर्ग और निम्न-मध्यवर्ग।

मध्यवर्ग की विशेषताएँ

यह मुख्यतः पढ़े-लिखे लोगों का वर्ग है। सरकारी और गैर-सरकारी संस्थानों में ऊँचे-ऊँचे या छोटे-छोटे पदों पर काम करने वाले नौकरीपेशा अफसर-कर्मचारी, प्रोफेसर, वकील, डॉक्टर, लेखक, आर्कीटैक्ट, इंजीनियर, व्यापारी और औसत दर्जे के उद्यमी-उद्योगपति इत्यादि मध्यवर्ग में आते हैं। इस वर्ग का चरित्र लचीला तथ अंतर्विरोधी है। ब्रिटिश शासन में उसकी नौकरशाही को चलाने वाले और उसका विरोध कर आज़ादी की लड़ाई लड़ने वाले बुद्धिजीवी इसी वर्ग से आए थे। अपनी महत्वाकांक्षाओं के चलते अपने मौजूदा वर्ग से, कुछ भी करके, अपने से ऊपर वाले वर्ग में जाने के लिए प्रयत्नरत ये लोग परिस्थितियों की मार से पिटकर लगातार निचले वर्ग की ओर धकेले जाते रहते हैं। इससे इनमें एक सतत तनाव और अंतर्द्वंद्व की स्थिति पाई जाती है। अपनी सुरक्षा और सुविधा के लिए यह वर्ग प्रायः किसी भी समझौते और अवसरवादिता के लिए तैयार रहता है। सोचने-कहने और करने के बीच की खाई तथा दिखावे की भावना इसकी सबसे बड़ी विशेषता है। अनेक परिस्थितियों के चलते, इस वर्ग के उदय के साथ-साथ संयुक्त परिवार व्यवस्था टूटी। परिवार छोटे और पति-पत्नी केंद्रित होते गए। नारी-शिक्षा के कारण समानाधिकारों की माँग करती स्त्री स्वालम्बन और आर्थिक स्वतंत्रता की ओर बढी। स्त्री के घर से बाहर निकलने तथा अन्य पुरुषों के संपर्क में आने से स्वच्छंद प्रेम-संबंधों को बढावा मिला। पुरुष के परम्परागत संस्कारों और स्त्री के नवअर्जित स्वतंत्र-व्यक्तित्व के कारण अहं का टकराव शुरू हुआ। स्त्री-पुरुष संबंधों में संघर्ष, पारिवारिक मूल्यों तथा सेक्स संबंधी नैतिकता के मानदण्डों में बदलाव आया। भारतीय समाज में परम्परागत मूल्यों में परिवर्तन, विवाह-संस्था में दरारें और परिवारों में विघटन की यह प्रक्रिया छठे-सातवें दशक में महानगरों से शुरू हुई और क्रमशः शहरों और कस्बों तक फैलती चली गई। मनोवैज्ञानिक स्तर पर यह वर्ग लगातार असंतुष्ट, अनिश्चित, आत्म-प्रदर्शनकारी, चिड़चिड़ा, निराश, मूल्यहीन और कुंठित होता गया है।

मध्यवर्ग और 'आधे-अधूरे' का कथ्य

'आधे-अधूरे' की पारिवारिक, आर्थिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक स्थितियों पर गंभीरता से विचार करें तो निम्नलिखित तथ्य स्पष्टतः हमारे सामने उभरकर आते हैं :

- इसका स्थान और परिवेश महानगर दिल्ली है - 'काफी अच्छा आदमी है जगमोहन! और फिर से दिल्ली में उसका ट्रांसफर भी हो गया है। मिला था उस दिन कनॉट प्लेस में' - पुरुष एक।'

- उसका समय छठे दशक के आसपास का है, जब केवल पाँच पैसे में अखबार आ जाता था और रुपए-डेढ़ रुपए में स्कूटर से आया-जाया जा सकता था। दृष्टव्य : बड़ी लड़की के प्रवेश के बाद पुरुष एक के संवाद।

डेढ़-दो दशक पहले यह एक व्यवसायी परिवार था, जिसमें घर में सोफा सेट, कबर्ड, डायनिंग और ड्रेसिंग टेबल है। पुरुष एक (महेंद्रनाथ) ने मित्र जुनेजा के साथ मिलकर पहले प्रेस और फिर फैक्ट्री लगाई थी। जब 'चार सौ रुपए मकान का किराया था। टैक्सियों में आना-जाना होता था। किस्तों पर फ्रिज खरीदा गया था। लड़के-लड़की की कान्वेंट की फीसें जाती थीं....।'

'शराब आती थी। दावतें उड़ती थीं।....'। अर्थात् पति-पत्नी तथा बच्चे सभी शिक्षित हैं। आर्थिक स्थिति अच्छी है और समाज में प्रतिष्ठा है। स्पष्ट है कि यह एक उच्च-मध्यवर्गीय परिवार है।

लेकिन इस बीच, प्रेस और फैक्ट्री बंद हो गई। महेंद्रनाथ कर्ज़दार, बेरोज़गार और निकम्मा हो गया। बेटे ने पढ़ाई बीच में छोड़ दी और फिर नौकरी भी। बड़ी बेटी ने घर से भागकर माँ के प्रेमी से चुपचाप शादी कर ली। छोटी बेटी अभी जैसे-तैसे पढ़ रही है और प्रतिदिन कुंठित और उद्दण्ड होती जा रही है। स्त्री (सावित्री) बेहतर ज़िंदगी के लिए किसी पूरे पुरुष की तलाश में यहाँ-वहाँ भटकते और नौकरी करते हुए बमुश्किल तमाम किसी तरह घर की गाड़ी खींच रही है।

आज घर में रखे सोफ़ा सेट, कबर्ड, डाइनिंग और ड्रेसिंग टेबल, कुर्सियाँ, टी-सेट इत्यादि टूटी-फूटी हालत में हैं और गद्दे, परदे, मेज़पोश और पलंगपोश घिसे, फटे या सिले हुए हैं। घर के सभी सदस्यों में असंतोष, तनाव, घुटन, टूटन और संघर्ष की स्थिति है। स्पष्ट है कि यह एक निम्न मध्यवित्तीय स्तर का घर है, जिसमे एक विघटित होते परिवार का जीवंत चित्रण हुआ है। 'घर' की तलाश राकेश के जीवन का प्रमुख उद्देश्य और उनके नाटकों का मूल कथ्य रहा है। 'आधे-अधूरे' में भी टूटते संबंधों और बिखरते परिवार के चित्रण के माध्यम से राकेश का केंद्रीय सरोकार घर की तलाश ही है।

'आधे-अधूरे' हमारे आज के समाज के ऐसे तमाम लोगों की अभिशप्त ज़िंदगी का प्रामाणिक दस्तावेज़ है जिन्होंने जीवन की तमाम इच्छाओं-आकांक्षाओं और उपलब्धियों को भौतिक सुख-सुविधाओं से जोड़ लिया और इस मृग मरीचिका में फंसकर पारिवारिक संबंधों की सहज प्राप्य आत्मीयता, ऊष्मा और भावनात्मक सुरक्षा तथा आत्मिक शांति को पूरी तरह खो दिया। सांसारिक अर्थ के चक्कर में जीवन का मूल अर्थ ही कहीं गुम हो गया। मोहन राकेश के शब्दों में इस नाटक में, 'अधूरे का मतलब इनकम्पलीट और आधे का मतलब हॉफ़ है। यह आज के सामान्य वर्ग से संबंधित है जो अपने में 'आधा' भी है और 'अधूरा' भी। यह इस शहर के एक मध्यवर्गीय परिवार की कहानी है जिसे परिस्थितियाँ निचले वर्ग की ओर धकेलती जा रही हैं। उनके जोश, पराजय, इच्छाएँ, संघर्ष और इसके साथ-साथ स्थिति का हाथ से फिसलते जाना - मैंने सब कुछ इसमें दिखाने की कोशिश की है।' विडम्बना यह है कि स्वयं आधे-अधूरे होने के बावजूद हम दूसरों के आधे-अधूरेपन को कतई बर्दाश्त नहीं कर पाते। इसका कथ्य इस बात को रेखांकित करता है कि पति-पत्नी के बीच किसी ऐसे सामंजस्य, संतुलन अथवा समीकरण की कोई संभावना नहीं हो सकती जिसमें ये परस्पर विरोधी जीवन एक-दूसरे को बिना फाड़ खाए साथ-साथ रह सकते हों - और इस विडम्बनापूर्ण स्थिति की सबसे बड़ी त्रासदी यह है कि ये अलग भी नहीं हो सकते।

प्रख्यात रंगकर्मी, निर्देशक और अभिनेता ओम शिवपुरी ने 'आधे-अधूरे' के कथ्य पर टिप्पणी करते हुए लिखा है, "एक दूसरे स्तर पर यह नाट्य-कृति पारिवारिक विघटन की गाथा है। इस अभिशप्त कुटुंब का हर एक सदस्य एक दूसरे से कटा हुआ है। घर की त्रासदायक 'हवा' से वे सब अपने और एक-दूसरे के लिए जहरीले हो रहे हैं।' 'बड़ी लड़की' मनोज रूपी हमदर्द द्वार को पाते ही बाहर निकल भागी है। 'लड़का' पत्रिकाओं में अभिनेत्रियों की रंगीन तस्वीरें काटता हुआ उस मौके के इंतजार में है, जब वह भी यहाँ से निकल सकेगा। अपने पिता के लिए उसके मन में करुणा है। माँ के लिए आक्रोश। वह बड़ी बहन के प्रेम में विश्वास नहीं करता, उसे घर से निकलने का ज़रिया मानता है।" यही स्थिति परिवार के दूसरे सदस्यों की है। हर एक अपने अधूरेपन के साथ दूसरे के अधूरेपन पर प्रहार करता है। इस प्रकार परिवार का हर सदस्य अपने जीवन से असंतुष्ट है और किसी ऐसे भविष्य का इंतजार कर रहा है, जिसका दूर-दूर तक पता नहीं है। इस पहलू पर प्रकाश डालते हुए ओम शिवपुरी कहते हैं, "एक अन्य स्तर पर यह नाट्य रचना मानवीय संतोष के अधूरेपन का रेखांकन है जो जिंदगी से बहुत कुछ चाहते हैं, उनकी तृप्ति अधूरी ही रहती है।" मध्यवर्ग के इसी आधे-अधूरेपन का नाटक है, 'आधे-अधूरे'।

8.3 स्त्री-पुरुष : संबंध-विश्लेषण

मोहन राकेश का बुनियादी सरोकार आज के मध्यवर्गीय घुन लगे जीवन में स्त्री-पुरुष संबंधों की विडम्बना, विषमता और त्रासदी का विश्लेषण-विवेचन करना रहा है। कालिदास से लेकर नंद और महेंद्रनाथ तक की यात्रा लेखक के पूरे रचनात्मक व्यक्तित्व, उसकी छटपटाहट एवं मान्यताओं का महत्वपूर्ण रेखांकन है, जिसमें उसने नर-नारी संबंधों के जटिल इतिहास को फिर-फिर दोहराया है। 'आधे-अधूरे' में पहली बार उन्होंने अपने इस कथ्य को समकालीन परिवेश, चरित्र तथा जीवन को आज की जीवित भाषा में प्रभावशीलता के साथ प्रस्तुत करने की सार्थक कोशिश की है। यह नाटक बड़ी प्रखरता से स्त्री-पुरुष के लगाव और अलगाव, प्रेम और घृणा तथा संलग्नता की विवशता और उसे तार-तार करने की क्रूरता का प्रामाणिक दस्तावेज़ है। एक भिन्न धरातल पर यह नाटक आज के परिवार और समाज के विघटन की करुण कथा भी है और मानवीय संबंधों एवं मूल्यों के टूटने की गाथा भी। 'अर्थ' और 'काम' संबंधी विकृतियों के भँवर में फँसे जटिल मानसिकता वाले 'आधे-अधूरे' के ये कुंठित चरित्र एक परिवार के बहाने से हमारे समसामयिक मध्यवर्गीय समाज का ही चित्र प्रस्तुत करते हैं।

राकेश के नाटकों के कथ्य का दायरा बेशक बहुत छोटा है, परंतु उसके भीतर उनकी गहरी, सूक्ष्म और प्रखर दृष्टि बहुत दूर तक चली गई है। 'आषाढ़ का एक दिन' का कालिदास मल्लिका (प्रेमिका) को छोड़कर प्रियंगुमंजरी (पत्नी) को अपनाता है परंतु कालांतर में उससे असंतुष्ट होकर मल्लिका के पास लौटता है और अंत में उसे भी अपने पूर्णतः अनुकूल न पाकर बाहर चला जाता है। 'लहरों के राजहंस' की सुंदरी नंद के लिए प्रेयसी भी है और पत्नी भी। परंतु सम्पूर्ण संतुष्टि और सामंजस्य यहाँ भी नहीं है। बुद्ध का आकर्षण नंद को खींचता है लेकिन उसे बाँध नहीं पाता। नंद सुंदरी के पास वापस लौटता है, लेकिन दोबारा जाने के लिए। पुरुष से हताश होकर 'आधे-अधूरे' में सम्पूर्णता और संतोष की इस तलाश का काम राकेश ने स्त्री को सौंपा है। लेकिन नतीजा यहाँ भी वही - बाहर और भीतर से जुड़ती-टूटती सावित्री अंत तक उतनी ही अधूरी और असंतुष्ट बनी रहती है। स्त्री और पुरुष दोनों घर नामक इस नरक को छोड़कर बाहर भाग जाना चाहते हैं। कोशिश भी करते हैं - लेकिन प्रत्यावर्तन के लिए विवश हैं। मुक्ति का कोई रास्ता नहीं है। यह अभिशप्त नियति राकेश के सभी पात्रों की है, जो बहुत दूर तक सच होने के कारण हमें बड़ी प्रभावी और अपनी-सी लगती है, लेकिन कहीं ले जाती नहीं - कोई रास्ता नहीं दिखाती। यह स्थिति 'आधे-अधूरे' की बहुत बड़ी शक्ति भी है और भारी सीमा भी। यह नियतिवाद एक निष्क्रिय हताशा को जन्म देता है जो दृढ़ इच्छाशक्ति, इंसानी कोशिश और संघर्ष के तमाम रास्तों को बंद कर देता है।

8.4 'आधे-अधूरे' में चरित्र-सृष्टि

'आधे-अधूरे' चरित्र प्रधान नाटक है। नाटक की प्रस्तावना में पुरुष कहता है, 'मैं इसमें हूँ और मेरे होने से ही बहुत कुछ इसमें निर्धारित या अनिर्धारित है।' यानी नाटककार ने हमेशा की तरह इस बार भी अपनी रचना को पुरुष-प्रधान बनाने का प्रयत्न किया है। परंतु सदैव की तरह इस बार भी उसे मुंह की खानी पड़ी है। कालिदास के मुकाबले मल्लिका और नंद के मुकाबले सुंदरी की तरह यहाँ भी पाँच-पाँच पुरुषों पर अकेली सावित्री भारी पड़ती है। 'आधे-अधूरे' की सावित्री एक ऐसी नौकरीपेशा स्त्री है जिसकी उम्र चालीस के आस-पास है लेकिन चेहरे पर यौवन की चमक और चाह अब भी बाकी है। वह जीवन में असफल हो चुके आत्मविश्वासहीन अपने पति महेंद्रनाथ से निराश होकर पिछले बीस-बाईस सालों से अपनी कल्पना के एक पूरे आदमी की तलाश में जुनेजा, मनोज, शिवजीत और सिहांनिया जैसे कई पुरुषों से टकरा-टकराकर घर वापस लौटती रही है। इसकी विडम्बना यह है कि तमाम महत्वाकांक्षाओं और कोशिशों के बावजूद यह उसी आधे-अधूरे पति महेंद्रनाथ के साथ ही जीने के लिए अभिशप्त है।

दोस्तों का चहेता और हंसमुख महेंद्रनाथ सावित्री से शादी के बाद कारोबार में लगातार असफल होकर आज पत्नी की कमाई पर ज़िंदा, लड़ने-कुढ़ने वाला और पत्नी के परिचितों या प्रेमियों के आने पर चुपचाप घर से चला जाने वाला एक पराजित, कटु और कभी-कभी खूंखार बन जाने वाला अजीब-सा कुंठित व्यक्ति बन गया है। सबसे अपमानित होकर वह बचपन के मित्र जुनेजा के यहाँ ऐसे जाता है, जैसे कभी घर नहीं लौटेगा। लेकिन अंत में 'ब्लडप्रैशर' की बुरी हालत में ही वह वापस आ जाता है। वह न सावित्री के साथ रह सकता है और न उससे अलग।

ऐसे परिवार में पले-बढ़े बच्चे स्वभावतः विकृतियों के शिकार होंगे ही। बड़ी लड़की बिन्नी अपनी माँ के प्रेमी मनोज से विवाह कर बैठी है और अब अत्यंत निराश, दुखी तथा टूटी हुई सी है। छोटी लड़की किन्नी में विद्रोह-भाव है। वह सिर-चढ़ी, मुंहफट, जिद्दी, आत्मकेंद्रित और यौन संबंधों में रुचि रखने वाली बिगड़ी हुई लड़की है। लड़के अशोक के चेहरे की कड़वाहट भरी हंसी से युवा पीढ़ी की पीड़ा तथा उसका आक्रोश, अस्वीकार और पलायन झलकता है। इक्कीस वर्षीय विरक्त और निकम्मा यह लड़का कोई काम-काज करने के बजाए अभिनेत्रियों की तस्वीरों और अश्लील पुस्तकों के सहारे जीवन काट रहा है। इन सभी चरित्रों में अंतर्द्वंद्व, टूटन, जलन, आक्रोश, तिक्तता और अजनबीपन भरा पड़ा है।

जुनेजा पैसे और दबदबे वाला काइयां लेकिन दोस्त से हमदर्दी रखनेवाला सुलझा हुआ आदमी है। शिवजीत के पास बड़ी डिग्री और दुनिया घूमने का अनुभव है। लेकिन वह दोगले किस्म का आदमी है। जगमोहन के पास ऊँचे संबंध, जबान की मिठास और खर्च की दरियादिली है। लेकिन वह एकनिष्ठ नहीं है। बड़े नाम वाला मनोज मां की जगह बेटी को ले भागता है। कामुक और फूहड़ बॉस सिंघानियाँ सावित्री के बजाए किन्नी में रुचि लेता है। ये सबके सब पात्र बेशक एकायामी हैं किंतु महेंद्रनाथ के अलग-अलग मुखौटे बनकर एक जटिल चरित्र की सृष्टि करते हैं। एक कलाकार से पाँच भूमिकाएँ करवाने के पीछे भी यही बुनियादी वजह है। 'आधे-अधूरे' के चरित्र रोचक और उनके आपसी संबंध जटिल हैं। विशिष्ट को सामान्य बनाने के लिए ही राकेश ने पहले चरित्रों के जातिवाचक और बाद में व्यक्तिवाचक नामों का प्रयोग किया है।

'आधे-अधूरे' के चरित्रों को स्वरूप और उनके चित्रण पर कई प्रकार के आरोप लगाए गए हैं, जो एक सीमा तक सही भी है। परंतु भारतीय मध्यवर्ग के व्यक्ति की प्रकृति और सही स्थिति को जाने बिना शायद हम इन पात्रों से न्याय नहीं कर सकते। इस संदर्भ में यहाँ इब्राहिम अल्काज़ी का यह कथन द्रष्टव्य है कि 'समाज-व्यवस्था आज तेज़ी से बदल रही है। न तो कोई टिकाऊ मूल्य रह गए हैं, न काई धार्मिक आस्था, न कोई राजनीतिक विश्वास, न कोई वैयक्तिक या सामाजिक विवेक। सभी कुछ काम चलाऊ है और हरेक समाधान तात्कालिक सुविधा पर टिका है। शाश्वत सत्य निकम्मे उपदेश बन गए हैं। ऐसी कोई चीज़ नहीं है जो लोगों को एक कर सके। न तो कोई एक लक्ष्य है, न कोई प्रतिबद्धता। समाज बिखर गया है, घर टूट चुका है और उसके सदस्य एक-दूसरे से कटकर अपरिचित की तरह भ्रांति और हताशा की अपनी-अपनी निजी आकारहीन दुनिया में रहते हैं। अपने नाटक 'हुई क्लो' में ज्याँ पाल सार्त्र ने कहा है, 'औरों की संगति नरक है।' भारत के मध्यवर्ग के बारे में यह बात निश्चय ही सच है। पर इससे भी बड़ी बात यह है कि व्यक्ति खुद अपने आप से कट गया है। वह स्वयं ही अपना नरक है। यही नहीं, बल्कि विडम्बना तो यह है कि इस प्रकार की स्थिति में उनकी कोई निश्चित और संगत पहचान नहीं बन पाती। ये मध्यवर्गीय चरित्र खण्डित और विभाजित व्यक्तित्व की धुंधली आकृतियाँ भर हैं, जो बदलती परिस्थितियों में अपने रूपाकार बदलते रहते हैं। यही कारण है कि हमें 'आधे-अधूरे' के घुन लगे इन मध्यवर्गीय चरित्रों के भीतर यौन कुंठाओं, अपूर्ण महत्वाकांक्षाओं, असफलताओं और अनजाने डरों से उद्भुत घृणा, तनाव, तिक्तता, चिड़चिड़ाहट, छटपटाहट, टूटन, आक्रोश ओर बिखराव का घना जंगल दिखाई पड़ता है।

8.5 'आधे-अधूरे' का परिवेश

'आषाढ़ का एक दिन' और 'लहरों के राजहंस' जैसे अर्द्ध ऐतिहासिक परिवेश के बाद मोहन राकेश ने पहली बार 'आधे-अधूरे' में समकालीन परिवेश, चरित्र और अनुभव को अपने नाटक का विषय बनाया। आधुनिक जीवन में से भी लेखक ने केवल मध्यवर्गीय पारिवारिक जीवन में स्त्री-पुरुष संबंधों को ही चुना। इसी इकाई में हम देख चुके हैं कि 'आधे-अधूरे' वास्तव में महानगरीय परिवेश में उच्च मध्यवर्ग से ढहकर निम्न मध्यवर्ग के स्तर पर आकर विखण्डित होते परिवार का चित्रण करता है।

यह सही है कि अर्थतंत्र पर स्त्री का एकाधिकार होने तथा पुरुष की बेकारी के कारण 'आधे-अधूरे' एक सामान्य नहीं विशिष्ट परिवार की कहानी बन गया है। परंतु इसे केवल एक औरत-मर्द की व्यक्तिगत त्रासदी कहकर कतई नहीं उड़ाया जा सकता, और न ही यह कहना सही है कि "यदि इस विशेष मध्यवर्गीय परिवार की केवल आर्थिक स्थितियाँ ही भिन्न होतीं तो नाटक में उस 'संत्रास' का, या कि जिसे नाटककार ने 'हवा' कहा है उसका, बहुत मामूली-सा ही असर रह जाता।" इस नाटक में सावित्री और महेंद्रनाथ के अलावा जुनेजा, शिवजीत, जगमोहन, मनोज और सिंघानिया का भी चित्रण या उल्लेख हुआ है। स्पष्टतः यह एकदम महेंद्रनाथ के ही प्रतिरूप नहीं हैं और न ही नाटककार ऐसा मानता है। इनकी सामाजिक, आर्थिक और मानसिक स्थिति एवं बनावट में काफी अंतर है। महेंद्रनाथ से लेकर जुनेजा तक - इस नाटक में निम्न, मध्य, उच्च-मध्यवर्ग के तीनों स्तर एक साथ मौजूद हैं। इसके अतिरिक्त अशोक और वर्णा के प्रेम-संबंधों का संकेत, किन्नी और सुरेखा की औरत-मर्द के रिश्तों की बातचीत तथा सुरेखा के माँ-बाप के विवाहेतर संबंधों का संदर्भ भी इस परिवेश को व्यापक एवं प्रामाणिक बनाते हैं। आर्थिक दृष्टि से बिन्नी और मनोज का वैवाहिक जीवन तो हर लिहाज़ से अच्छा है। फिर पति-पत्नी संबंधों को लेकर उनमें तनाव, घुटन, संघर्ष और बिखराव क्यों है? स्पष्ट है कि आज के मध्यवर्गीय जीवन-परिवेश में पति-पत्नी के अलगाव और परिवार के विघटन का एकमात्र कारण आर्थिक-संकट ही नहीं है। यह एक पेचीदा और बारीक समस्या है और इसके प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष अनेक कारण हैं। इसीलिए राकेश ने उसे अव्यक्त और अस्पष्ट 'हवा' कहा है और उसे सरलीकृत करने का प्रयत्न नहीं किया है। 'आधे-अधूरे' मध्यवर्गीय परिवार के परिवेश का उसकी यथासंभव सम्पूर्णता और जटिलता के साथ प्रस्तुतीकरण हुआ है।

8.6 'आधे-अधूरे' की भाषा और संवाद

मोहन राकेश के सम्पूर्ण नाट्य-लेखन को बदले और निरंतर बदल रहे मानवीय संबंधों के संदर्भ में सही नाट्य-भाषा की तलाश कहा जा सकता है। इसीलिए सही नाटकीय शब्द और संवाद में उसकी उचित एवं सार्थक जगह तलाशने की जैसी छटापटाहट, बेचैनी और प्रयोगशीलता राकेश में देखने को मिलती है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

'आधे-अधूरे' में आज के भारतीय मध्यवर्गीय जीवन के सूक्ष्म-जटिल अनुभवों, अनुभूत-अर्द्ध अनुभूत संवेदनाओं, बहुआयामी वैविध्यपूर्ण स्थितियों और जूझते-टूटते आधे-अधूरे पात्रों की तनावपूर्ण विस्फोटक मनःस्थितियों को पूरी सच्चाई, ऊष्मा और विश्वसनीयता के साथ अपने समकालीन मुहावरे और बोलचाल की सजृनात्मक भाषा में पहली बार सफल नाटकीय अभिव्यक्ति मिली है। इसकी भाषा पारस्परिक संबंधों के तनाव, बिखराव, अलगाव, ऊब, कुढ़न, झल्लाहट, छटपटाहट, बौखलाहट, टूटन, आक्रोश, विद्रूप, विडम्बना, संघर्ष और मनहूसियत को 'जीने की भाषा' में प्रस्तुत करती है। यह नाट्य-भाषा शब्द, ध्वनि, मौन, मुद्रा, क्रिया, मंच-सज्जा, संगीत और छायालोक के संश्लेष से उपलब्ध की गई है।

प्रतीकात्मकता

'आधे-अधूरे' की भाषा की एक प्रमुख विशेषता यह भी है कि इसमें नाटककार प्रायः प्रचलित या परंपरित बड़े-बड़े प्रतीकों के प्रयोग की अपेक्षा रोज़मर्रा की जिंदगी में इस्तेमाल होने वाली आम और बहुत साधारण चीज़ों को ही गहरी और नई अर्थ-छाया देकर प्रतीक की गरिमा प्रदान कर देता है। दृश्य-बंध में प्रयुक्त सभी टूटी-अधटूटी और घिसी-पिटी चीज़ें इस घर की प्रत्यक्ष आर्थिक स्थिति के रेखांकन के साथ-साथ इस परिवार के सदस्यों को पारस्परिक विघटित संबंधों का परोक्ष संकेत भी देती है। नाटककार का यह कथन क्या घर की स्थूल चीज़ों के बजाए उसमें रहने वाले ज़िंदा लोगों के अंदरूनी हालात का ही सच्चा बयान नहीं है कि "एक चीज़ का दूसरी चीज़ से रिश्ता तात्कालिक सुविधा की मांग के कारण लगभग टूट चुका है। फिर भी लगता है कि वह सुविधा कइ तरह की असुविधाओं से समझौता करके की गई है - बल्कि कुछ असुविधाओं में ही सुविधा खोजने की कोशिश की गई है।" इसी प्रकार क्या रचनाकार यह कहकर कि "तीन दरवाज़े तीन तरफ़ से कमरे से झाँकते हैं।" 'कमरे' को इस घर के जीवन और 'दरवाज़ों' को उसमें ताँक-झाँक करने वाले सिंघानिया, जगमोहन तथा जुनेजा का रूप नहीं दे देता?

आंतरिक लयपूर्ण संवाद

शब्द अपने आप में महत्वपूर्ण नहीं होते, उनका अपने पड़ौसी शब्दों से संबंध और संदर्भ ही उन्हें अर्थपूण बनाता है। इसलिए नए-नए शब्दों या वाक्यांशों को गढ़ने की अपेक्षा उनके संदर्भों की लय और नाटक के चरित्रों की आंतरिकता से उद्‌भुत नयी-नयी लयों का अनुसंधान करना ही भाषा-सृजन और जीवंत संवाद-लेखन का एकमात्र सही रास्ता है। 'आधे-अधूरे' के संवादों की सबसे बड़ी विशेषता एक खरी, तनावपूर्ण, स्वतःस्फूर्त, बिम्बात्मक भाषा और आंतरिक लयपूर्ण संवादों की रचना है। इस नाटक के प्रत्येक पात्र के संवादों के शब्दों के अर्थ को जाने बिना ही सिर्फ उसकी ध्वनि और उच्चारण के अंदाज़ से ही बोलने वाले के चरित्र की मुख्य विशेषता को पहचाना जा सकता है। उसके संवादों के स्वरूप में पर्याप्त वैविध्य भी है आरंभ में काले सूट वाले आदमी के लम्बे एकालाप और अंत में जुनेजा-सावित्री के बड़े-बड़े संवादों को छोड़ दें तो शेष संपूर्ण नाटक के संवाद प्रायः छोटे-छोटे, विश्वसनीय, सघन, प्रखर तथा चरित्रों और स्थितियों, मनःस्थितियों को जीवंतता से उद्‌घाटित करने वाले हैं। संवादों में शब्दों का स्थान इतना निश्चित है कि मामूली सा हेर-फेर भी अर्थ का अनर्थ कर सकता है। सहज, आत्मीय, अंतरंग और रचनात्मक बोलचाल की भाषा में प्रभावशाली संवाद-सृजन राकेश की एक बड़ी उपलब्धि है।

शाब्दिक संवाद

'आधे-अधूरे' के अनेक संवाद एकदम साधारण, अभिधात्मक और सहज से प्रतीत होते हैं। परंतु उनके व्यंग्यात्मक अर्थ बड़े पैने और गहरे हैं। महेंद्रनाथ आर्थिक-सामाजिक कारणों से स्वयं को हीन समझता है और सावित्री के सामने दब्बू बना रहने के लिए विवश है। पत्नी के प्रश्नों और आरोपों का कोई संतोषजनक उत्तर उसके पास नहीं है। इसलिए वह बड़ी चतुराई से वार करता है। उसका प्रहार ऊपर से मासूम और बेचारा सा लगने के बावजूद भीतर से बेहद तीखा होता है। उदहारण के लिए पुरुष-एक का आँखें बचाते हुए स्त्री से यह कहना कि, "आ गईं दफ्तर से? लगता है आज बस जल्दी मिल गयी?" एक सामान्य प्रश्न या साधारण कथन-सा दिखाई देता है। जबकि वास्तव में वह उसके दफ्तरी जीवन पर व्यंग्य कर रहा है। मानों कह रहा हो, "तुम्हारा मन तो दफ्तर और अपने चाहने वालों के बीच ही लगता है। घर तो मज़बूरी में ही आना पड़ता है - सिर्फ कुढ़ने और लड़ने के लिए। देर से आने पर बस न मिलने की बात को भी महेंद्रनाथ जैसे सिर्फ एक बहाना या झूठ ही समझता है। सावित्री भी यह बात अच्छी तरह समझती है, इसीलिए वह जानबूझकर जवाब न देकर उस पर प्रश्न दाग देती है। सिंघानियाँ और जगमोहन को लेकर किए गए महेंद्रनाथ के व्यंग्य एवं कटाक्ष भी बिलियर्ड के खेल की याद दिलाते हैं, जिसमें प्रत्यक्षतः प्रहार एक बॉल पर किया जाता है और वास्तविक लक्ष्य कोई दूसरी बॉल ही होती है जो पॉकिट में जाती है। दबंग, आक्रामक, कटु और तेज़ तर्रार सावित्री जगमोहन के सामने कैसे बेबस और विनम्र हो जाती है, देखिए - "मैं वहाँ पहुँच

गई हूँ जहाँ पहुँचने से डरती रही हूँ, उम्र भर। ... तुम कितनी अच्छी तरह समझते हो मुझे .... कितनी अच्छी तरह! इस वक्त मेरी जो हालत है अंदर से....।"

'खुशी के संबंध में बिन्नी के जवाब पर महेंद्रनाथ की यह टिप्पणी भी दृष्टव्य है - "आदमी जो जवाब दे, वह उसके चेहरे से भी तो झलकना चाहिए।" मन, वचन और भावभंगिमा का यह असामंजस्य बिन्नी के अंतर्द्वंद्व, तनाव और दुःख के साथ-साथ आज के व्यक्ति की विभाजित मानसिकता एवं विषमता का संकेत भी दे देता है।

सावित्री द्वारा कई जगह किया गया 'ओह्, होह, होह्....।' जैसे निरर्थक शब्दों का प्रयोग और किन्नी द्वारा बिन्नी और माँ के शब्दों की भिन्न अर्थ एवं अन्दाज़ में पुनरावृत्ति (जो सामान्यतः दोष मानी जाती है) यहाँ उनके मन की खीझ, कड़ुवाहट, झुंझलाहट और दमित आक्रोश की सशक्त एवं सार्थक अभिव्यक्ति बन जाती है।

दृश्य बिम्बों की संवादात्मकता

नाटक में संवाद का वास्तविक अर्थ चरित्रों द्वारा बोले गए शब्दों या वाक्यों से ही नहीं होता। यहाँ अर्थगर्भी मौन भी संवाद होता है और चरित्रों द्वारा या उनकी मुख-मुद्राओं, भंगिमाओं और रंग-चर्चाओं से मंच पर बनने वाले दृश्य-बिम्ब भी उनके शाब्दिक संवादों के ही नाटकीय पर्याय होते हैं। उदहारण के लिए एक ही अभिनेता द्वारा पाँच भूमिकाएँ निभाने की रंग-युक्ति वास्तव में एक रंग-संवाद ही है जिसके ज़रिए नाटककार "बिल्कुल एक से हैं आप लोग! अलग-अलग मुखौटे, पर चेहरा? - चेहरा सबका एक ही!" जैसे शाब्दिक संवाद को दृश्य-संवाद के रूप में अनुदित करता है। इसी प्रकार, नाटक में सावित्री के प्रथम प्रवेश के साथ ही नाटककार स्त्री के व्यक्तित्व, संघर्ष और अंतर्द्वंद्व की झलक उसकी थकी-हारी इस भंगिमा द्वारा साफ तौर से दिखा देता है कि "स्त्री कई कुछ संभाले बाहर से आती है। कई कुछ में कुछ घर का है, कुछ दफ्तर का, कुछ अपना। चेहरे पर दिन-भर के काम की थकान है और इतनी चीज़ों के साथ चलकर आने की उलझन।" पारिवारिक, बाहरी (नौकरी) और व्यक्तिगत जीवन के असामंजस्यपूर्ण तकाज़ों में तालमेल न बैठा पाना ही वास्तव में सावित्री की त्रासदी का मूल कारण है, जिसका उल्लेख जुनेजा नाटक के अंत में यह कह करता है कि "तुम्हारे लिए जीने का मतलब रहा है कितना कुछ एक साथ होकर, कितना कुछ एक-साथ पाकर और कितना कुछ एकसाथ ओढ़कर जीना।" प्रथम संकेत में स्त्री की यह स्थिति विवशताजन्य प्रतीत होकर उसके प्रति सहानुभूति पैदा करती है, जबकि जुनेजा के इस अंतिम विश्लेषण में यह अत्यधिक महत्वाकांक्षिणी और घोर स्वार्थी बताई जाती है तथा दर्शक के मन में वितृष्णा पैदा करती है। वास्तव में सावित्री का चरित्र इन दोनों सीमांतों को एकसाथ अपने में समाहित किए हुए है। इनमें से केवल किसी एक पक्ष का स्वीकार स्त्री की जटिल मानसिकता का सरलीकरण करके उसके चरित्र को एकांगी बना देता है। इस समग्रता और जटिलता के कारण ही अभिनय की दृष्टि से सावित्री का चरित्र कठिन और चुनौतीपूर्ण बनता है। पुरुष-पात्रों की तरह भले ही उसमें बाहरी विविधता न हो परंतु सूक्ष्म धरातल पर उसके चरित्र को परत-दर-परत देखना और दिखाना भी आसान काम नहीं है।

इसी प्रकार स्त्री का सर्वप्रथम संवाद ही हमें लापरवाह किन्नी की पढ़ाई के कारण घर पर पड़ते आर्थिक दबाव, तस्वीरों के साथ ज़िंदगी काटते बेरोज़गार और नाकारा अशोक के बोझ तथा निठल्ले और फालतू से महेंद्रनाथ का आरंभिक परिचय दे देता है। यहाँ राकेश ने बड़ी खूबी से पुरुष-एक के 'पाजामे' को स्वयं महेंद्रनाथ का ही प्रतीक बना दिया है जिसे सावित्री "मरे जानवर की तरह उठाकर देखती है और कोने में फेंकने को होकर फिर एक झटके से साथ उसे तहाने लगती है।" कभी महेंद्रनाथ से मुक्त होकर अलग से अपनी जिंदगी जीने और कभी इस प्रयत्न में असफल होकर इसी नामुराद मोहरे को ठोंक-पीट कर अपने लायक बनाने की कोशिश ही तो वास्तव में सावित्री की ऊबड़-खाबड़ जीवन-यात्रा का पूरा इतिहास है, जिसका संकेत राकेश ने आरंभ मे ही दे दिया है। इसी प्रकार, जगमोहन के प्रवेश के पूर्व सावित्री द्वारा बाहर जाने के लिए तैयार होते समय "गले की माला को उंगली में लपेटते हुए झटका लगने

से माला टूट जाती है। परेशान होकर वह माला को उतार देती है और जाकर कबर्ड से दूसरी माला निकाल लेती है।' सावित्री की मनःस्थिति और परिस्थिति को ध्यान में रखकर देखें तो 'माला' यहाँ उसकी वर्तमान स्थिति की प्रतीक बन जाती है। इसके दाने या मोती घर के अलग-अलग सदस्य हैं जिन्हें अपनी व्यवस्था के धागे से स्त्री ने एकसाथ बांध रखा है। परंतु अशोक के सीधे प्रहार से आहत सावित्री सब की परवाह छोड़कर अब से केवल अपनी ज़िंदगी देखने का निर्णय और परिणामस्वरूप यह घर छोड़कर जगमोहन के साथ अपनी नई दुनिया बनाने का संकल्प करती है। इसी बात को रचनाकार ने यहाँ पुरानी माला के टूटने और नई माला निकालने/पहनने के संकेत द्वारा नाटकीय अभिव्यक्ति दी है। स्त्री के संवादों पर ध्यान दें तो यह 'माला' यहाँ एक स्थान और एक परिवार में एक ही तरह से गुज़ारे गए या जा रहे दिनों-वर्षों की परंपरा भी बन जाती है। झटके से तोड़कर सावित्री जीवन के उस ढर्रे को छोड़कर एक नये ढंग से ज़िंदगी जीने का प्रयत्न कर रही है। यहीं सावित्री द्वारा टटोलने और ढूँढ़ने के बावजूद एक चप्पल का दूसरा पैर न मिलने पर सब जूतों-चप्पलों को ठोकरें लगाकर पीछे हटा देना भी पारिवारिक सामंजस्य (या महेंद्रनाथ के अपेक्षित रूप) और उपलब्धि की भरसक तलाश की असफलता पर पूरे घर को ठुकरा देने की झुँझालाहट-भरी कोशिश का संकेत देता है। सावित्री को अपनी पसंद और अपने पाँव के सही नाप की दूसरी चप्पल का न मिलना भी क्या उसके जीवन की विडम्बना की ओर सीधा इशारा नहीं करता? इसी प्रकार अनेक स्थानों पर पात्रों का दराज़/कबर्ड को बार-बार खोलना बंद करना तथा महेंद्रनाथ का कुर्सी को झुलाना चरित्रों के मन की उलझन और उनके असमंजस को द्योतित करता है। इसी प्रकार चीज़ का न खुलने वाला डिब्बा भी इस घुटन-भरे अभिशप्त परिवार की निजातरहित अंधी परिस्थितियों का प्रतीक बन गया है जिसे भरी हुई नोक वाले किसी भोंथरे टिन-कटर रूपी समाधान या समझौते से नहीं खोला जा सकता। इस स्थिति से निपटने के लिए किसी तीखी नोक वाले तेज़ औज़ार की ज़रूरत है। इसी प्रकार राकेश ने इस नाटक में 'धूल', 'हवा', 'फ़ाइल', 'रबड़-स्टैम्प', 'पर्स' जैसे अनेक सामान्य शब्दों और मामूली-सी चीज़ों को भी अतिरिक्त एवं नया अर्थ देकर रचनात्मक रूप में प्रयोग किया है।

8.7 सारांश

मोहन राकेश के नाटक 'आधे-अधूरे' से संबंधित इस इकाई में आपने नाटक के विभिन्न पक्षों का विवेचन पढ़ा है। इससे पूर्व की इकाई में आपने मोहन राकेश के नाटक संबंधी विचारों और उनके नाट्य लेखन के बारे में अध्ययन किया था।

इस इकाई के अंतर्गत हमने भारतीय मध्यवर्ग के परिप्रेक्ष्य में यह जाना कि किस प्रकार 'आधे-अधूरे' समकालीन भारतवर्ष के महानगरीय मध्यवर्गीय पारिवारिक संबंधों के विघटन के ज़रिए घर की तलाश करता है। इसका कथ्य कुछ खास हालात में कुछ खास लोगों की अजीबोगरीब सी ज़िंदगी से जुड़ा होने के बावजूद हमारे समकालीन समाज के एक बड़े वर्ग के आम लोगों की स्वाभाविक ज़िंदगी का प्रामाणिक दस्तावेज़ बन जाता है। राकेश की दृष्टि से देखने पर ऐसा प्रतीत हो सकता है कि किसी भी परिस्थिति में स्त्री-पुरुष संबंधों में कभी कोई सामंजस्य और स्थायी तालमेल हो ही नहीं सकता। इनके रिश्ते एक ऐसी अंतर्विरोधी स्थिति को पैदा करते हैं जिसमें न वह शांतिपूर्वक साथ रह सकते हैं और न ही अलग हो सकते हैं। वह इस नारकीय जीवन को जीने के लिए अभिशप्त हैं।

राकेश ने समाज के इन घुन लगे, घुटते, जूझते, टूटते, बिखरते चरित्रों का चित्रण इस खूबी से किया है कि ये वर्ग-पात्र होने के साथ-साथ अपनी व्यक्तिगत और निजी पहचान भी बनाए रखते हैं। चारों पुरुष पात्रों के अलग-अलग चरित्र सरलीकृत और एकायामी-से प्रतीत होते हैं किंतु वे मिलकर जिस एक व्यक्ति का चरित्र प्रस्तुत करते हैं, वह अपने आप में काफी जटिल और बहुआयामी है। सावित्री के चरित्र में भी आज की पढ़ी-लिखी, स्वतंत्र और आत्म-निर्भर स्त्री की कई रंगते मिलीजुली नज़र आती है। बिन्नी में घुटन, झुंझालाहट और असमंजस है तो

किन्नी में उद्दण्ड विद्रोह। अशोक नई पीढ़ी के दिशाभ्रम, आक्रोश और व्यंग्य-विद्रूप को प्रस्तुत करता है।

इसका परिवेश समकालीन शहरी मध्यवर्गीय जीवन के यथार्थ से जुड़ा है। अपने पूर्व नाटकों में संस्कृत की तत्सम शब्दावली वाली अलंकृत और साहित्यिक भाषा के प्रयोग के बाद राकेश ने 'आधे-अधूरे' में आज के मुहावरे और बोलचाल की भाषा को 'जीने की भाषा' बनाकर ऐसे रचनात्मक, अंतरंग और स्वतःस्फूर्त रूप में प्रस्तुत किया है कि यह आधुनिक हिंदी नाटक की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि बन गई है। प्रभावशाली शाब्दिक संवादों के अलावा राकेश ने मुखमुद्रा और रंग-चर्याओं को भी नाटकीय संवाद का स्तर प्रदान किया है। चरित्रों की आंतरिकता से जुड़े विशिष्ट लयपूर्ण संवाद राकेश के इस नाटक की अत्यंत उल्लेखनीय विशेषता हैं। कुल मिलाकर, कथ्य, चरित्रांकन और भाषा-संवाद इत्यादि की दृष्टि से 'आधे-अधूरे' आधुनिक हिंदी और भारतीय रंगकर्म की एक अत्यंत महत्वपूर्ण नाट्य-रचना है।

अभ्यास

1. मध्यवर्गीय जीवन के परिप्रेक्ष्य में 'आधे-अधूरे' का विवेचन कीजिए।
2. मध्यवर्ग के संबंध में क्या आप मोहन राकेश के दृष्टिकोण से सहमत हैं? 'आधे-अधूरे' की समीक्षा करते हुए अपना मत प्रस्तुत कीजिए।
3. 'आधे-अधूरे' की भाषा और संवाद संबंधी विशेषताओं का सोदाहरण विवेचन कीजिए।